P: ISSN NO.: 2321-290X RNI : UPBIL/2013/55327 Shrinkhla Ek Shodhparak Vaicharik Patrika
E: ISSN NO.: 2349-980X Vol-III* Issue-IX* May -2016

स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास में कृषक चेतना

अर्चना मिश्रा
शोध छात्रा,
हिन्दी विभाग,
डॉ0रा0म0लो0 अवध विश्वविद्यालय,
फैज़ाबाद

सारांश

स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी उपन्यासों में कृषक जीवन के विविध क्षेत्रों में समाजवादी जन–चेतना का उदय परिलक्षित होता है। समाजवादी चेतना का मूल स्रोत प्रजातांत्रिक शासन प्रणाली है। संविधान के अनुसार देश की समस्त जनता अपने विकास के लिए सर्वथा मुक्त है। देश के गांवों में इस चेतना को उकसाने का कार्य वामपंथी राजनीतिक दलों ने किया जिसे यथार्थ के धरातल पर आंकने का प्रयत्न स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी उपन्यासकारों ने किया।

मुख्य शब्द : स्वातन्त्र्योत्तर, प्रजातांत्रिक शासन,व्यवसाय, कृषक,शोषक,जमींदार, प्रजातन्त्र,जातिवाद।

प्रस्तावना

भारत कृषि प्रधान देश है। भारतीयों का प्रमुख व्यवसाय कृषि है। देश–विकास का मूलाधार कृषि है। कृषि व्यवसाय को औद्योगिक दर्जा दने की बात बहुत दिनों से चल रही है। आज तक कृषि व्यवसाय को औद्योगिक दर्जा नहीं दिया गया। आज़ादी के बाद अनेक सरकारें आयी और गयीं। अनेक पंचवर्षीय योजनायें लागू की गयी। हरित क्रान्ति की घोषणा की गई। हरित क्रांति तो देश में आई किन्तु पंचवर्षीय योजनाओं का लाभ सामान्य कृषकों को नहीं हुआ। सभी योजनाओं का लाभ जमींदारों को हुआ। बड़े किसान बड़े होते गये छोटे किसान टूटते–टूटते कृषक मज़दूर बन गये। महाराष्ट्र और कर्नाटक के कृषकों की हालत इतनी बिगड़ गई कि वे आत्महत्या करने के लिए विवश हो गय हैं। महाराष्ट्र में सन् 1998–99 में लगभग 500 किसानों ने आत्महत्या कर ली है। इसका कारण है कि महाराष्ट्र के किसान ऋण के बोझ से दब गये हैं। भारतीय कृषकों की स्थिति बड़ी अद्भुत है। कृषक जब अधिक अनाज पैदा करता है तब कीमतें कम हो जाती है, जब कम अनाज होता है तो अनाज की कीमतें बढ़ जाती हैं। प्रसिद्ध कृषि विश्लेषक हरिभाऊ शेलके कहते हैं ''सन् 1997–98 में महाराष्ट्र में सोयाबीन का भाव प्रति क्विंटल 1200–1300 रूपये था। उस वर्ष सोयाबीन की फसल अच्छी नहीं हुई थी। परन्तु सन् 1998–99 में फसल अच्छी हुई तो भाव 600–700 रूपये प्रति क्विंटल हो गया।''[1] इस प्रकार देश के किसानों को लूटा जा रहा है।

रात–दिन खेत में पसीना बहाने वाले किसानों को अपने अनाज की कीमत तय करने का कोई अधिकार नहीं है। भारतीय आम किसानों का शोषण बिचोलिए–दलाल करते हैं। यदि किसानों को प्रत्यक्ष उपभोक्ताओं अपनी वस्तु बेचने का अधिकार प्राप्त हो गया तो उनका शोषण नहीं होगा। समकालीन उपन्यासकारों ने ग्रामीण जनता को, किसानों को जाग्रत करने का प्रयास किया है। जब तक आम जनता का प्रबोधन नहीं होगा तब तक उनका शोषण चलता रहेगा। 'बलचनमा' के स्वामी जनता को सम्बोधित करते हुए कहते हैं– ''कांग्रेस आपका दुखदर्द क्या समझेगी ? वह खादी पहनकर और गले में माला डालकर जमींदारों को जेल भेजने का नाटक करती है। पीछे जेल से निकले वही जमींदार कांग्रेसी आप लोगों को शांति और सन्तोष का पाठ पढ़ाते फिरते हैं ..... खबरदार। भाइयों ऐसे लीडरों के फेर में मत पड़ना। किसान भाइयों! मांगने से कुछ नहीं मिलेगा। आपकी ताकत से ही आप अपना हक पा सकते हैं। आपकी ताकत क्या है ? एक हैं अपनी ताकत संगठन। घर में रोते–रोते अकेले हाय–हाय करते–करते हजारों साल गुजर गये। सरकार को आपकी रत्ती भर भी परवाह नहीं है। वह आप लोगों से नहीं चोर–डाकुओं से घबराती है। उन्हें पक्के मकानों (जेलों) में हिफाजत से रखती है। खाने–पीने का पहनने ओढ़ने का, दवा–दारू का उनके लिए सारा इन्तज़ाम सरकार करती है। मगर गेहूँ, बासमती पैदा करके गैरों को लुटाने वाले आप खुद भूखों मरते हैं।''[2]

वर्तमान राजनीति में 'दलालों' की एक नई जमात बन गई है। ये दलाल नेताओं के सहारे जनता का शोषण करते हैं। आजादी के बाद राजनीति का जो स्वरूप बन रहा था, उसमें जनसम्पर्क का अर्थ लोगों के सही–गलत

कामों को ठीक कराना था। कोटा,परमिट से लेकर ठेकेदारी योजनाओं की असीम बढ़ोत्तरी से विभागीय अधिकारियों में सरफुटव्वल होने लगी। पदोन्नति, फायदे की जगहों पर पोस्टिंग के लिए अधिकारी एक–दूसरे की शिकायतें करके भंडाफोड़ किया करते। शासन में उत्सुकदास बड़ी चालाकी से शिकायतों का प्रयोग अधिकारियों के ऊपर करने लगे। ..... तबादला, तरक्की, जांच, आमदनी वाली जगहों पर पोस्टिंग आदि हथियारों का प्रयोग किया जाता है। आजादी के बाद जैसे भूखे, नंगों की बड़ी सी फौज–पार्टी सरकार को घेर रही थी।''[3]

आज ग्रामीण जनता या कृषकों में विद्रोह की भावना भर रही है। वह अन्याय का विरोध करने लगी है। उनका शोषण करने वाले अधिकारियों की शिकायतें मंत्री महोदय से करने लगी है। ग्रामीण किसान जनता तो भ्रष्ट अधिकारियों के मुंह पर कालिख भी पोतने लगी है। अधिकारियों को मारने की वारदातें भी होती रहती है। 'एक और मुख्यमंत्री' उपन्यास में गांव का एक बूढ़ा मजदूर अधिकारियों के शोषण के सम्बन्ध में मंत्री जी से शिकायत करते हुए कहता है– ''आप मंत्री जी हैं न ? सरकार मुझे माफ करे, आपको बताऊँ ..... यहां हमें अपनी मजदूरी के एवज में अनाज भी पूरा नहीं मिलता। ये आपके अफसर जमींदारों के कारिन्दों से कम नहीं हैं। हमें खूब लूटते हैं। इनमें कोई दया–माया नहीं है। इन्हें हमारे पर रहम नहीं आता सरकार। आप अचरज करेंगे। .. .. कल आपके एक अफसर ने शराब पीकर एक लड़की की इज्जत ले ली।''[4]

ब्रिटिश भारत में भूमि व्यवस्था के तीन प्रकार हो गये थे–(1) इस्तमरारी (2) आरजी (3) रैयतवारी बन्दोबस्त की व्यवस्था। इन तीनों प्रकार की व्यवस्था में भूमि पर अधिकार लोगों को ब्रिटिश सरकार से प्राप्त होता था। सरकार जिस किसान के साथ जमीन का बन्दोबस्त करती थी, वह किसी और आदमी को जमीन उठा देता था, वह दूसरा आदमी किसी तीसरे को जमीन लगान पर दे देता था। इस तरह शिकमी बनाने की यह प्रक्रिया चलती थी। इससे अन्त में एक ऐसे वर्ग बन जाते थे, जो जमींदारों की तरह बिना कोई मेहनत किये खेती करने वाले किसानों की कमाई में हिस्सा बँटाता था। भारत में जमींदारी प्रथा इस प्रकार फैल रही थी, जिससे अधिकाधिक किसानों की जमीन छिनती जा रही थी और छोटे–बड़े धनी लोग उद्योग धन्धा में पूंजी न लगाकर खेती में पूंजी लगाने के उद्देश्य से जमीन पर टूट पड़े थे। ''परिणाम यह हुआ कि जमीन जोतने वाले काश्तकारों की रक्षा के लिए सरकार ने जो कानून बनाये वे केवल छोटे दर्जे के जमींदारों तक ही पहुंचे और असली किसान ज्यादातर या तो भूमिहीन खत मजदूरों की स्थिति में पहुंच गया या उसकी हालत सर्वथा अधिकारहीन किसानों जैसी हो गई। ऐसे प्रत्येक किसान की पीठ पर पचासों छोटे–छोटे मुफ्तखोर लदे हुए थे जो काम कुछ नहीं करते थे और किसान की कमाई में से हिस्सा बँटाते थे।''[5]

इन सारी क्रियाओं ने जमीदारी प्रथा की असंगतियों को चरम सीमा पर पहुंचा दिया।

सन् 1947 के बाद भारतीय सरकार ने जमींदारी और जागीरदारी प्रथाओं को समाप्त करने के लिए तक सरकार का हस्तक्षेप होने लगा। 'दारूलशफा' में राजकृष्ण मिश्र कहते हैं– ''विकासशील जमींदारी उन्मूलन का कानून पास किया जो भारतवर्ष में कृषि–क्रान्ति का आरंभिक बिन्दु है। जिसने ''भारतीय कृषि और भूमि व्यवस्था के पुनरूद्धार की दिशा में लगान उपजीवी जमींदार और जागीरदार–वर्ग के अधिकारों और आधिपत्य को किसी हद तक हटाकर कृषि विकास की पूर्व स्थितियाँ पैदा की।''[6] जमींदारी उन्मूलन का यह कदम कृषि और कृषकों को उन्नतिशील बनाने के लिए उठाया गया था जो वस्तुतः राजनैतिक था।

स्वातन्त्र्योत्तर उपन्यासकारों ने समस्याओं से जूझ रहे किसानों को देखा तथा उसे अभिव्यक्त किया। रेणु के 'मैला आंचल' में जमींदारी उन्मूलन और तत्सम्बंधी आक्रोश के स्वर विद्यमान हैं। 'मैला आंचल' उपन्यास में सोशलिस्ट पार्टी का नेता 'कालीचरन' मेरीगंज में किसान सभा का आयोजन करता है और उनमें चेतना का संचार करता है। वह कहता है– ''जमीन किसकी ? ..... जोतने वालों की। जो जोतेगा वह बोयेगा वह काटेगा।''[7]

'कालीचरण' के कारण ही किसान मजदूर जागते हैं। परानपुर गांव को तो जमींदारी उन्मूलन के प्रभावों ने विभिन्न इकाइयों में बांटकर रख दिया है। ''जमींदारी उन्मूलन के कारण परानपुर गांव मुकदमे बाजी, सामाजिक तनावों और सम्बद्ध परिवर्तनों की जकड़नों में बुरी तरह जकड़ गया है। भूमि की राजनीति और मुकदमों में गांव नष्ट हो रहा है। आज के गांव की स्थिति कितनी क्रूर बन गई है वह इसमें द्रष्टव्य है।''[8]

'रेणु' के 'मैला आँचल' में कालीचरन मेरीगंज गांव में समाजवादी चेतना का स्रोत है। वह वर्ग संघर्ष का कट्टर हिमायती है। वह कृषकों को अपने हकों के लिए जागरूक करता है। वह सभायें आयोजित करता है– ''किसान राज कायम हो, मजदूर–राज कायम हो।'' आदि नारों से गूँज उठता है, जिसके परिणामस्वरूप किसान जागृत होते हैं। संथाल लोग तहसीलदार विश्वनाथ प्रसाद के चालीस बीघे वाले बीहान के खेत में से बीहान लूट लेते हैं। उनके मन में विद्रोह की आँधी है और मस्तिष्क में शोषण का प्रतिकार। मेरी गंज के उठते हुए तूफान को देखकर प्रतीत होता है कि कृषक जागृत हो रहे हैं। श्री ए0 आर0 देसाई का मत है– ''वस्तुतः कृषक वर्गगत यह राजनीतिक चेतना और इससे सम्बद्ध अन्य राजनीतिक गतिविधियां आज के मानवीय राजनीतिक जीवन के गत्यात्मक पहलू हैं।''[9]

''बिहार प्रदश के मिथिला अंचल के डाक्टर रहमान कृषकों की चेतना को जागृत करते हैं। जमींदार किसानों को भूमि से वंचित करने के लिए बेदखली दायर करते हैं, तब सोशलिस्ट नेता किसानों को उनका हक दिलाने के लिए जेहाद छेड़ते हैं।''[10]'बलचनमा' का किसान करवट बदलने लगता है। जमींदार खान बहादुर सादुल्ला खाँ के खिलाफ संघर्ष करता है। वह किसानों में चेतना भरता है। इसीलिए वे नारे लगाते हैं– ''कमाने वाला खायेगा ..... इसके चलते जो कुछ हो। इन्किलाब जिन्दाबाद। जमीन किसकी ..... जोते–बोये उसकी। अंग्रेजी राज ..... नाश हो। जमींदारी प्रथा ..... नाश हो। किसान सभा ..... जिन्दाबाद। लाल झंडा .... जिन्दाबाद।''[11]

'बाबा बटेसरनाथ' उपन्यास का जैकिशुन बलचनमा की भांति किसानों की चेतना को जागृत करता है। समाजवादी चेतना का एक कारण शिक्षा भी है। शिक्षा के परिणामस्वरूप गांव के पढ़े लिखे नवयुवक अपने अधिकारों के प्रति जागरूक है। यही कारण है कि कुर्क अमीन जालिम खाँ तिवारीपुर गांव में माल–गुजारी और तकाबी वसूल करने आता है और किसानों से कहता है कि अंग्रेज बहादुर की जमीन है तब मिलिन्द के यह कहने पर कि– ''हुजूर की यह बात पसंद नहीं आयी कि जमीन अंग्रेज बहादुर की है, जमीन तो हिन्दुस्तानियों की है। हमारा इस पर हक होता है और हुजूर भी हिन्दुस्तानियों में से एक है।''[12] कुर्क अमीन हतप्रभ रह जाता है। 'नदी फिर बह चली' के मंगलदास में भी समाजवादी चतना का उदय परिलक्षित होता है। 'धरती धन न अपना', 'लोकऋण', 'सोना–माटी', 'दुखमोचन' एवं 'गंगामैया' उपन्यास भी कृषक चेतना के सुन्दर उदाहरण हैं।

सरकारी कर्मचारी किसानों से घूस लेते हैं। अगर उन्हें घूस न दी जाय तो किसानों पर बेदखली दाखिल कर देते हैं। पुलिस के अत्याचारों से गांव अछूता नहीं है। स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी उपन्यासकारों ने इसका यथार्थ चित्रण किया है।

भारत जैसे कृषि प्रधान देश में कृषक जीवन राजनीति से प्रेरित एवं परिचालित होता है। गांवों के विषय में सबकी यह धारणा होती है कि वे सहज और सरल होते हैं तथा राजनीति से गांव का कोई सम्बन्ध नहीं है। राजनीति तो केवल शहर में होती है। परन्तु नवीन सन्दर्भ में यह बात असत्य सिद्ध होती है। भारत की ग्रामीण जनता इसका स्पष्ट उदाहरण है।

स्वतन्त्रता पूर्व के राष्ट्रीय वातावरण में असहयोग आन्दोलन, सामाजिक बहिष्कार आन्दोलन, विभिन्न सत्याग्रह, भारत छोड़ो आन्दोलन आदि ऐसे अनेक राष्ट्रीय–मुक्ति–संघर्ष के कार्यक्रम थे जिसमें ग्रामीणों ने अपनी सहायता देकर उसे गति प्रदान किया। स्वतंत्रता प्राप्ति हमारे राष्ट्रीय जीवन में नई सम्भावनाओं के आयाम लेकर आई है जिसका चित्रण स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी उपन्यासकारों ने किया है।

डॉ0 ज्ञानचन्द्र गुप्त ने लिखा है– ''भारतीय ग्राम्य–जीवन को सबसे अधिक प्रभावित एवं प्रचलित करने वाली उनकी मानसिकता में आलोड़न–विलोड़न करने वाली घटना हमारी राष्ट्रीय स्वतन्त्रता एवं तज्जनित विकास कार्य है।''[13]

स्वतन्त्रता के बाद कोई भी गांव राजनीति से बच नहीं पाया है। डॉ0 प्रेमकुमार का यह कथन सत्य है कि ''ग्रामांचल में राजनीति पहले भी थी किन्तु उस समय औसत ग्रामीण उसकी उपेक्षा करता था। परन्तु आज सभी गांव और कस्बे राजनीति के संक्रामक रोग से ग्रस्त हो गये हैं।''[14]

नागार्जुन के 'बाबा बटेसरनाथ' उपन्यास में नागार्जुन ने ''आसाम–बंगाल रेलवे में हड़ताल, मिदनापुर के किसानों का लगानबन्दी का आन्दोलन, पंजाब में महंतों के खिलाफ अकाली सिखों की घृणा का उल्लेख करके किसानों की राजनीतिक चेतना का इतिहास सम्मत वर्णन किया है।'' इसके द्वारा लेखक यह कहना चाहता है कि ''अब किसान जमींदारों का नरम चारा नहीं रह गया है। वह अपने खेत, धरती, फसल, घर और आबरू के लिए उजड़ जायेगा किन्तु अत्याचारी के सामने झुकेगा नहीं। वह जीवन–संघर्ष के लिए तैयार है। गरीबी, भुखमरी और दमन की भयंकरता देखकर भी वह हार मानकर नहीं बैठता।''[15] गांधी जी की प्रबल इच्छा थी कि ग्रामीण जनता स्वावलम्बी बने। पंचायती राज की स्थापना के पीछे यह कारण भी था। उनका विश्वास था कि आजादी नीचे से शुरू होनी चाहिए। ''प्रत्येक गांव में पंचायती–राज हो, उसके पास पूरी सत्ता और ताकत हो। इसका स्पष्ट अर्थ यह है कि हर गांव को अपने पांव पर खड़ा रहना चाहिए। गांव अपनी आवश्यकतायें स्वयं पूरी कर लें और सारा कारोबार खुद चलायें।''[16]

डॉ0 ज्ञानचन्द्र गुप्त ने लिखा है– ''पंचायती–राज का लक्ष्य सत्ता का विकेन्द्रीकरण है। जिससे गांव का प्रत्येक व्यक्ति सत्ता का साझेदार बन सके, उसकी रीति–नीति में, उसकी विभिन्न योजनाओं के क्रियान्वयन में जागरूकता के साथ भाग ले सकें। सरकारी स्तर पर पंचायती राज का उद्देश्य प्रजातन्त्र के कार्य में करोड़ों व्यक्तियों को लाकर प्रजातन्त्र को वास्तविक बनाना है।''

इस प्रणाली में स्थानीय प्रशासन का समस्त कार्य ग्राम–पंचायत द्वारा नियंत्रित एवं सम्पादित होता है। स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी उपन्यासकारों ने ग्राम पंचायत की वर्तमान अवधारणा और उससे उत्पन्न स्थितियों का बड़े मनोयोग से अंकन किया है।

स्वतंत्र भारत के नवीन संविधान ने देश के समस्त नागरिकों को वयस्क मताधिकार प्रदान किया है। इस अधिकार ने देश की ग्रामीण जनता को भी देश की सत्ता में साझेदारी दी है। करोड़ों किसानों की मतपेटियों ने देश की राजनीति को प्रभावित एवं प्रेरित किया है। चुनाव ही ग्राम–जीवन में राजनीतिक चेतना एवं अधिकार–बोध जगाने के प्रबल माध्यम है। वैसे आज की चुनाव प्रणाली विभिन्न विसंगतियों का समुच्चय बनकर रह गई है। अशिक्षा एवं अज्ञानता इन विसंगतियों के मूल हैं। स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी उपन्यासों में इन असंगतियों से उत्पन्न तिक्तता का स्वर विद्यमान है। इन उपन्यासों में स्थानीय चुनावों का वर्णन जीवंत एवं यथार्थ रूप में हुआ है।

''चुनाव के परिणामस्वरूप ही भारतीय ग्रामीण कृषकों में अधिकार–बोध की भावना जागृत हुई है।''[17] इस प्रकार जहां चुनाव के कारण ग्रामीण कृषक जनता को लाभ हुआ है वहीं इसका विपरीत प्रभाव भी हुआ है। चुनाव प्रचार ने लोगों का जीना दूभर बना दिया है। 'लोकऋण' में विवेकीराय लिखते हैं– ''रात के सन्नाटे में दोनों ओर के लाउडस्पीकर जब एक साथ भाषण वर्षा करने लगते हैं तो उनींदे लोग गांव छोड़ कहीं चले जाने की बात सोचने लगते। औरते गाली देती, 'ई दूनो रावन के मन वाले अपना–अपना जोर दिखा रहे हैं।'' वातावरण कितना तनावपूर्ण, तिक्त, विषैला और पागलपन भरा होता जाता है, कोई सीमा नहीं।''[18]

संक्षेपतः चुनावों से गांव की आम जनता के जीवन में एक ओर जहां अधिकार–बोध की भावना जागृत हुई है, मताधिकार का महत्व समझा है, वहीं दूसरी ओर अवसरवादिता पनपी है। गांव गन्दी राजनीति के अखाड़े

मात्र बनकर रह गये हैं और लोग येन केन प्रकारेण मात्र कुर्सी–सत्ता हथियाना चाहते हैं, जिससे ग्राम्य–जीवन विश्रृंखल बनता जा रहा है। कृषक जीवन के समग्र ढाँचे में जातीयता की भावना भर गई है। राजनीतिक पार्टियाँ भी जातिवाद की सहायता से संगठन बनाना जायज समझती हैं। राजनेताओं को पार्टी के नाम पर इतने वोट नहीं मिलते जितने जाति के नाम पर मिलते हैं। रामदरश मिश्र के 'जल टूटता हुआ' उपन्यास में ''दीनदयाल का प्रचारक दलसिंगार वोट के लिए औरत समुदाय को चाची, ताई आदि कहकर जातिवाद के सहारे रामकुमार के खिलाफ प्रचार करता है। स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास समसामयिक राजनीतिक घटनाओं का कृषक समाज पर जो प्रभाव रहा है, उसे यथार्थता से अंकित करते हैं। पंचायती राज व्यवस्था से कृषक समाज में जागृति तो हुई, किन्तु ग्राम शासन की मुख्य बागडोर गांव के जमींदार–वर्ग के हाथो चली गयी और पंचायती राज का मुख्य उद्देश्य जो था– सत्ता का विकेन्द्रीकरण, वह सत्ता गांव की प्रभावी जातियों के पास गिरवी रह गई। चुनाव ग्राम्य जीवन में राजनीतिक चेतना एवं अधिकार बोध जगाने के प्रबल माध्यम हैं, परन्तु आज की चुनाव प्रणाली विभिन्न विसंगतियों का समच्चय बनकर रह गई है। इन सभी पक्षों की ओर उपन्यास संकेत करते हैं जिसका यथार्थ चित्रण स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी उपन्यासकारों ने किया है।

किसानों के विकास के लिए कुटीर उद्योग की उन्नति और प्रसार एक ओर तो प्रगतिशील कृषि व्यवस्था दूसरी ओर अग्रसरित औद्योगिकता के अत्यन्त सहायक है। योजना आयोग ने प्रथम पंचवर्षीय योजना के निर्माण काल में ही इसका अनुभव किया कि ग्रामीण विकास–कार्यक्रम में ग्रामीण उद्योगों का केन्द्रीय स्थान है। थ्रेसर, बुलडोजर, मशीन पम्प आदि गांवों में आ चुके हैं। बिजली और सड़क भी अधिकांश गांवों म प्रवेश कर चुकी है। देशी खाद के साथ किसानों को रासायनिक खाद (उर्वरक) प्राप्त हुआ है। नये बीज और सिंचाई के साधन प्राप्त हुए हैं।

इस प्रकार गांव का किसान वैज्ञानिक पद्धति से खेती कर रहा है। किसान अपने उत्पादन की लागत और परिश्रम के आधार पर उत्पाद मूल्य निर्धारित करने की मांग बहुत दिनों से कर रहा है। स्वतंत्रता के पश्चात शिक्षा का प्रसार, औद्योगीकरण, कृषि के नवीन उपकरणों का विकास एवं प्रयोग हुआ है, किन्तु आज भी यह कहना पड़ता है कि कृषकों की आर्थिक स्थिति में विशेष परिवर्तन नहीं हुआ।

स्वातन्त्र्योत्तर उपन्यासकारा ने किसानों की चेतना का जो चित्रण किया है वह कोरा बौद्धिक चित्रण नहीं है, उनमें स्वानुभूति एवं संवेदन का स्पर्श है।

उद्देश्य

शोध छात्रा,''स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास में कृषक चेतना'' नामक शीर्षक पर शोध कार्य कर रही है। उक्त शोध विषय के अन्तगत ''स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास में कृषक चेतना'' विषय की विवेचना करना आवश्यक है। इसी प्रकिया मे वर्तमान शोधपत्र प्रस्तुत किया जा रहा है।

निष्कर्ष

स्वतन्त्रता के पूर्व गांवों में थोड़ी बहुत राजनीतिक चेतना पहुंच चुकी थी जो स्वतन्त्रता के बाद विकसित हुई। स्वतन्त्रता के बाद तो राजनीति न कृषकों के मन में अपना घर कर लिया। वहां पर पंचायती–राज, मताधिकार, संविधान के धर्म निरपेक्ष लोकतंत्रात्मक स्वरूप आदि विभिन्न राजनीतिक कार्यों से आयी है। आज कृषक भी अपने अधिकारों को जानते हैं तथा उनके प्रति जागरूक हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. प्रबुद्ध भारत पत्रिका– मखराम पवार– 28–2–99
2. बलचनमा– नागार्जुन, पृष्ठ 132–33
3. दारूलशफा– राजकृष्ण मिश्र, पृष्ठ 22
4. एक और मुख्यमंत्री– यादवेन्द्र शर्मा, पृष्ठ 176
5. भारतः वर्तमान और भावी–रजनी पामदत्त, पृष्ठ 92
6. भारतीय ग्रामः सांस्थानिक परिवर्तन और आर्थिक विकास– डॉ0 पूरनचन्द्र जोशी, पृष्ठ 44
7. 'मैला आँचल'– फणीश्वरनाथ 'रेणु', पृष्ठ 42
8. परतीः परिकथा– 'रेणु', पृष्ठ 286
9. स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास और ग्राम चेतना– डॉ0 ज्ञानचन्द्र गुप्त, पृष्ठ 86
10. बलचनमा– नागार्जुन पृष्ठ 128
11. बलचनमा– नागार्जुन पृष्ठ 134
12. पानी के प्राचीर– रामदरश मिश्र, पृष्ठ 197
13. स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास और ग्राम चेतना– डॉ0 ज्ञानचन्द्र गुप्त, पृष्ठ 20
14. हिन्दी के आंचलिक उपन्यास– डॉ0 प्रेमकुमार, पृष्ठ 43–44
15. स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास में ग्राम समस्यायें– डॉ0 ज्ञान अस्थाना, पृष्ठ 207
16. हिन्दी उपन्यास साहित्य पर वैचारिक आन्दोलनों का प्रभाव– डॉ0 पी0के पद्मजा, पृष्ठ 78–79
17. 'लोकऋण' – विवेकी राय, पृष्ठ 186
18. लोकऋण – विवेकी राय, पृष्ठ 181